International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly

ISSN – 2347-7075
Impact Factor – 0.899
Vol.2 No.4 Mar–April 2015

हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श

डॉ. श्रीकांत बी. संगम

सह प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,

सी.एस.बी. कला, एस.एम.आर.पी. विज्ञान और

जी.एल.आर. वाणिज्य स्नातक महाविद्यालय, रामदुर्ग-591123

Email: sbshindi@gmail.com

दलित शब्द का इतिहास लगभग सौ वर्षों पुराना है। अनेक विद्वानों ने दलित शब्द को अनेक अर्थों में प्रयोग किया है। कुछ विद्वानों का कहना है कि दलित एक जाति के लिए नहीं बल्कि दबे-कुचले लोगोंके लिए प्रयोग होता है। दलित का अर्थ शोषित, उत्पीडित तथा पद दलित स्वीकार किया गया है। दलित शब्द एक आधुनिक शब्द है। इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग महात्मा ज्योतिबा पुले ने किया था। उसके बाद बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने किया था। बहुजन शब्द पालि भाषा शब्द है। इस शब्द को बताने वाले गौतम बुद्ध थे। उनका नारा 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' था। महात्मा गाँधी ने सन् 1932 में अछूत समाज के लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया था।

दलित शब्द की उत्पत्ति संस्कृत धातु 'दल' से हुई है, जिसका अर्थ है तोड़ना, हिस्से करना, कुचलना आदि से है। मानक हिन्दी शब्द कोश में 'दलित' का अर्थ दलिद्दर दरिद्र, गया बीता और बहुत ही निम्न कोटि का कहा गया है। संस्कृत हिन्दी शब्द कोश में दलित का अर्थ 'दलन' किया हुआ, गिरा हुआ और अविकिसित कहा गया है। मानक हिन्दी कोश में दलित का अर्थ 'जिसका दलन हुआ हो, मसला या रौंदा गया हो जो दबाया गया हो, कुचला गया हो अर्थात् जिसे पनपने और बढ़ने नहीं दिया गया हो और ध्वस्त या नष्ट किया गया हो अर्थात् दलित वर्ग समाज का वह निम्नतम वर्ग है जो ऊँचे वर्ग के लोगों के उत्पीड़न के कारण आर्थिक दृष्टि से बहुत ही हीन दशा में हो जैसे दास प्रथा, सामंतशाही व्यवस्था में कृषक और पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूरी।

डॉ. भीमराव अंबेडकर दलितों के मसीहा और मार्गदर्शक माने जाते हैं। इनके मार्ग का अनुसरण करके जो साहित्य लिखा जा रहा है वही दलित साहित्य है। दलित साहित्य की वेदना 'मैं' की वेदना नहीं बल्कि पूरे समाज की वेदना है। महात्मा ज्योतिबा पुले ने कहा है- 'गुलामी की यातना को जो जानता है, वही जानता है और जो जानता है वही पूरा सच कह पाता है। सचमुच राख ही जानती है जलने का अनुभव और कोई नहीं।'

दलित विमर्श का सामान्य अर्थ पीडित, शोषित व दबाया गया, लोगों में अपने अधिकारों के प्रति सजगता एवं जागृति से है। दलितों के बारे में किया गया विचार ही दलित विमर्श कहलाता है। सदियों से सामंती परंपरा व सामाजिक विसंगतियों की दीवार को ढ़हाकर स्वाभिमान के महल का निर्माण करना दलित विमर्श का ही परिणाम है। हिन्दू श्रेणी में सबसे निचली श्रेणी में धकेले गए लोग जब शिक्षित संगठित व संघर्षशील बनकर अपने अस्तित्व की पहचान तथा सम्मानजनक जीवन जीना चाहते हैं, तो वह उन लोगों की चैतन्य-प्रक्रिया है। क्योंकि विमर्श का संबंध मन से है। मन से संबंधित होने के कारण मननशील प्रक्रिया है। व्यक्ति जब आंतरिक व बाह्य रूप से चेतनशील बन जाता है तो वह अस्तित्व की पहचान को सार्थक बनाने में समर्थ हो जाता है। दलित विमर्श या संदर्भ में दलित व्यक्ति जब शोषणों व अत्याचारों से

ऊबकर व अन्य सामाजिक कुवृत्तियों से बाहर निकलकर एक सभ्य समाज की कल्पना करता हुआ मान-सम्मान व स्वाभिमान से जीना चाहता है तो यह उसके मन का विमर्श कहलाता है।

हिन्दी साहित्य में दलित-विमर्श मध्यकाल में भक्ति आन्दोलन के साथ आरंभ हुआ था। जब जातिगत संकीर्णता अपने चरम पर पहुँच गयी तो निम्नवर्ग का आक्रोश उभरा। मानव मात्र में एक ही परमतत्व के दर्शन करनेवाली भारतीय संस्कृति में जातिगत कट्टरता का मूलोच्छेद करने के लिए जो संत आगे बढ़े वे उन निम्न जातियों से आये थे, जिन्होंने अत्याचार को सहन किया था, इसलिए वे जातिवादी व्यवस्था पर तीव्र कटाक्षेप करते हैं। नामदेव, कबीर और रविदास जैसे संतों ने दलितों की पीड़ा को अत्यंत मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है। इन संतों का स्वप्न था समतामूलक समाज की स्थापना। इसके साथ ही मध्यकाल के अन्य संत जो दलित वर्ग से नहीं आये थे, वे भी दलितों के शोषण मुक्ति के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त की है।

दलित साहित्य का इतिहास बहुत पुराना है। दलित साहित्य जिस क्रांति का हिमायती है वह बहुत पहले ही आरंभ हो चुकी थी। स्वतंत्र भारत में उसे प्रोत्साहन मिला और वह गतिशील हो गई। वर्तमान दलित साहित्य उसी क्रांति की संतान है, जो बहुत पहले संत साहित्य के रूप में आरंभ हो चुकी थी। दलित साहित्य आज जो निषेध और नकार की भाषा बोलता है, उसके बीज कई बर्षों पहले संत साहित्य में अंकुरित हो गये थे। 'साहित्य मूलतः एक मानसिक क्रिया, एक सर्जनात्मक और आत्मचैतन्य उडाम माना जा सकता है। यद्यपि वह इस अर्थ में सामाजिक रूफ से आकार ग्रहण करता है कि लेखक प्रचलित बौद्धिक इतिहास का अंग होता है, अपने साथ के लोगों की भाषा, प्रवृत्तियों और तर्जों का भागीदार होता है और उन मूल्यों को व्यंजित करता है, जो समाज राष्ट्र या युग के किसी अन्वेषणीय संदर्भ में प्राप्त होते हैं।'

दलित साहित्यकार अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ रचनाकार्य से जुडकर साहित्य की सृजनात्मकता में मानवीय सरोकारों, संवेदनाओं और स्वतंत्रता, भाईचारे की भावनाओं को स्थापित करता है। उसकी दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति और उसकी पीड़ा, उसके सुख-दुख महत्वपूर्ण है। उसमें दलित हो या स्त्री, उसके प्रति रागात्मक तादात्म्य स्थापित करना दलित साहित्य का प्रमुख प्रयोजन है। दलित चिंतन ने नया आयाम देकर साहित्य की भावना का विस्तार किया है। पारंपरिक और स्थापित साहित्य को आत्मविश्लेषण और पुनर्विश्लेषण के लिए बाध्य किया है। झूठी और अतार्किक मान्यताओं का निर्ममता से विरोध किया है। अपने पूर्व साहित्यकारों के प्रति आस्थावान रहकर नहीं, बल्कि आलोचनात्मक दृष्टि रखकर दलति साहित्यकारों ने पुनर्मूल्यांकन की जद्दोजहद शुरु की है, जिससे जड़ता टूटी है। साहित्य आधुनिकता और समकालीनता की अग्रसर हुआ है।

दलित साहित्य ने बाबा साहब डॉ. अंबेडकर के मूलमंत्र शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो, की सही व्याख्या प्रदान कर दलितों में एक नई वैचारिक क्रांति पैदा की है, जिससे देश की सत्ता व संपदा में राजनीतिक क्षेत्रों में भारी उथल-पुथल मचा दी है। समाज परिवर्तन का जो काम हिन्दी साहित्य कई शताब्दयों में कभी नहीं कर पाया, दलित साहित्य ने वह 2-3 दशकों में राजनीतिक क्षेत्र में भारी मात्रा में कर दिखाया। देश की इक्कीसवीं सदी कैसी होगी, दलित साहित्य उसकी रूपरेखा का अंकन करके आगे बढ़ रहा है।

दलित लेखन केवल दलितों के अधिकार एवं मूल्यों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक संदर्भों के साथ जुडकर समूचे समाज की अस्मिता और मूल्यों की पहचान बनता है। रमणिका गुप्ता कहना है कि "दलित साहित्य उस दबी हुई अस्मिता को प्राणवान मानव-अस्मिता का हिस्सा बनाने की लड़ाई लड़ रहा होता है, जब वह वर्णविहीन, वर्गविहीन, जातिविहीन समाज बनाकर एक मानवीय समाज बनाने की घोषणा करता है। जनवादी, प्रगतिशील और जनतांत्रिक साहित्य जो भारत के जन्मना जाति के संदर्भ में केवल वर्ग की ही बात करते एक तरफा, कहेंकि इकहरा हो गया था, दलित साहित्य ने सामाजिक समानता और राजनीतिक भागीदारी को भी साहित्य का विषय बनाकर उनकी आर्थिक समानता की अधूरी मुहिम को पूर्णता दी। इन तीनों मुद्दों पर समानता प्राप्त किए बगैर मनुष्य पूर्ण समानत प्राप्त नहीं कर सकता। दलित साहित्य इस पूर्ण समानता के लिए संघर्षरत है।

भारत के आधुनिक समाज की यह विडंबना ही कही जाएगी कि लोकतांत्रिक विचारों और मूल्यों तथा समानता और भाईचारे के प्रचार-प्रसार के बावजूद जातिगत भेदभाव और छुआछूत जैसी बीमारियों

हमारे भारतीय समाज का अपरिहार्य अंग बनी हुई है। दलित साहित्यकारों ने इसी छुआछूत को मिटाने के लिए और समाज में अपनी स्थिति की उपस्थिति दर्ज करने के लिए साहित्य का सृजन करना प्रारंभ किया। डॉ. अंबेडकर का यही सपना था कि अपनी आर्थिक तंगी के बावजूद शिक्षा पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। आज के दलित साहित्यकारों के प्रेरणास्रोत हैं। हिन्दी दलित साहित्य की समृद्धि के शिखर तक पहुँचाने में ओमप्रकाश वाल्मीकी का सर्वाधिक योगदान रहा है। इसी कारण वाल्मीकी जी हिन्दी दलित साहित्य में सर्वोच्च स्थान के अधिकारी बने हैं। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि दलित साहित्य के लिए आधुनिक काल एक स्वर्ण युग है, जिससे दलितों की प्रधानता है। दलित समाम में परिवर्तन की कामना ही दलित साहित्य की अंतिम लक्ष्य है।

निःसन्देह देश में जातिवाद की समस्या भयावह है। आज दलित साहित्य में जड़-रूढ़ जातिवादी सामाजिक संरचना को बदलने की शक्तिनिहित है। सदियों से शोषण का शिकार दलित वर्ग संघर्षरत है कि वह भी स्वतंत्रता, समानता व सम्मान को प्राप्त कर सके। जब कि प्रकृति ने किसी के साथ भेदभाव नहीं किया तो, समाज में भेदभाव क्यों? आज दलित साहित्य सहजता की ओर बढ़ रहा है। समाज में शोषित वर्ग की समस्याओं को सामने लाने वाले दलित साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है।

अबला को सबला बनानेवाला, शोषित को मुक्ति देने वाला, अपमानित को सम्मान दिलानेवाला, मूक को वाणी देने वाला, निम्न को ऊँचे स्तर पर बिठाने वाला, अनंत मानव का साहित्य, दलित साहित्य है। भेदभाव रहित समाज का निर्माण करनेवाला यह साहित्य आधुनिक युग की देन है। अंबेडकर जी के विचार से प्रभावित यह साहित्य आज नई व्यवस्था का प्रेरणा स्रोत है। परंपरागत नैतिक, धार्मिक, पाखंडी मान्यता को हटाने वाले नए साहित्य का यह रूप है। दलित साहित्य माणवता का पक्षधर होने के साथ समता का प्रचारक है। जाति को ध्वस्त करके मानव समाज का निर्माण करनेवाला प्रगतिवादी, समाजवादी विचारों का प्रतिपादक है। काल्पनिकत की अपेक्षा यथार्थ की भूमि पर खरा उतरने वाला मानवी मन का सच्चा प्रेमी, आत्मा की आवाज 'दलित साहित्य' है। यह विशिष्ट जाति, पंथ, धर्म का न होकर समस्त शोषित, पीड़ित, उपेक्षित, शापित मानव का साहित्य-वृद्ध साहित्य है।

संदर्भ सूची :

1) हिन्दी कथा साहित्य में दलित विमर्श- डॉ. प्रीति
2) दलित साहित्य : स्वरूप एवं महत्व- डॉ. सोनिया दहिया
3) दलित विमर्श : एक चेतना-निर्मला
4) दलित विमर्श : अवधारणा और इतिहास- डॉ. ममता देवी
5) दलित साहित्य : आशय, आंदोलन और अवधारणा- डॉ. रामचन्द्र
6) आधुनिक हिन्दी दलित विमर्श व नवजागरण- मुक्ता
7) दलित विमर्श : स्वानुभूति बनाम सहानुभूति का सवाल- डॉ. निरंजन कुमार